Q भारतीय परिषद् अधिनियम 1861 ई० की मुख्य धाराओं का उल्लेख करें ?

1858 का अधिनियम अपनी कसौटी पर पूर्णतः खरा नहीं उतरा परिणामस्वरूप 3 वर्ष बाद 1861 ई० में ब्रिटिश संसद ने भारतीय परिषद् अधिनियम पारित किया। यह पहला ऐसा अधिनियम था जिसमें 'विभागीय प्रणाली' एवं 'मंत्रिमण्डलीय प्रणाली' की नींव रखी गयी। पहली बार विधि निर्माण एवं कार्य में भारतीयों का सहयोग लेने का प्रयास किया गया। 1858 के अधिनियम द्वारा केवल गृह सरकार में ही परिवर्तन हुए थे।

भारतीय संविधान में महान परिवर्तनों की आवश्यकता है, विशेषकर भारतीय लोकमत से निकट का सम्पर्क स्थापित करने की। बार्टल फ्रेयर (Bartle Frere) "जब तक आपके पास कोई वायु दाब मापक यन्त्र अथवा सुरक्षा कपाट के रूप में एक विचार विमर्श परिषद् नहीं होगी, मैं विश्वास करता हूँ, कि आपको इसी प्रकार के अस्पष्ट तथा भयानक विस्फोटों से साक्षात्कार होना ही पड़ेगा।" ठीक इसी प्रकार सर सैयद अहमद खां ने कहा था कि 1857-58 की घटनाओं का मुख्य कारण शासक और शासित वर्ग के बीच आपस में ताल-मेल का न होना था।

1861 ई० के भारतीय परिषद् अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार थीं —

(केन्द्र)

कार्यपालिका / परिषद् → 1861 अधिनियम के द्वारा वायसराय की कौंसिल में एक और सदस्य बढ़ा दिया गया। अब सदस्यों की संख्या पाँच हो गई। इसके लिये यह आवश्यक था कि वह वित्त और कानून का विशेषज्ञ हो।

विधि-निर्माण-सम्बन्धी उपबन्ध → कानून बनाने के लिए व्यवस्थापिका सभा में भी सदस्यों की संख्या बढ़ी गयी इसमें कम से कम 6 और अधिक से अधिक 12 सदस्य रखे गये, इसके अतिरिक्त सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष तथा ये सदस्य वाइसराय द्वारा नियुक्त होते थे। जिसमें भारतीय सदस्य को लेने का प्रबंध किया गया।

→ भारत मंत्रि "Commander in chief" को व्यवस्थापिका-

सभा का विशेष सदस्य नियुक्त किया गया।

→ गर्वनर जनरल को नियम बनाने तथा आदेश देने का अधिकार मिला, अपनी अनुपस्थिति में वे कौंसिल के किसी सदस्य को सभापति बना सकता था। गर्वनर जनरल को कार्य विभाजन का अधिकार मिला इस से "विभाग प्रणाली" की शुरुआत हुई। वाइसराय अकेले कोई कानून नहीं बना सकता था।

→ व्यवस्थापिका सभा का कार्य केवल कानून बना था, वह कार्यपालिका के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। गर्वनर जनरल कौंसिल के किसी प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकता था। अतः उसे आध्यादेश जारी रखने का अधिकार था।

(प्रांत)

→ प्रत्येक प्रांत के गर्वनर को यह अधिकार दिया गया, की वह अपनी परिषद् में कम से कम 4 और अधिक से अधिक 8 सदस्यों की नियुक्त कर सकता था। परिषद् का कार्य मुख्यतः प्रांत के लिए कानून बनाना था, किन्तु अंतिम स्वीकृत वाइसराय की होती थी।

→ वाइसराय किसी भी प्रांत का विभाजन कर सकता था, अथवा उसकी सीमाओं घटा या बढ़ा सकता था। अथवा उसकी सीमाओं घटा या बढ़ा सकता था।

→ कुछ विशेष विभाग जैसे सार्वजनिक ऋण, मुद्रा, अर्थ, डाकखाना, तार, टेलीग्राम, धर्म आदि इन विशेष के अतिरिक्त केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकार में कोई अंतर नहीं विषय रखा गया। गर्वनर को कानून बनाने का अधिकार मिला लेकिन अंतिम स्वीकृत वाइसराय ही करते थे। -आवश्यकता यहाँ 'किया

1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम भारत के वैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अधिनियम 1858 के अधिनियम से बेहतर था क्योंकि इसके द्वारा भारतीयों को कानून निर्माण के कार्य में भाग लेने का अवसर मिला। 2 स्थानीय ज्ञान तथा आवश्यकताओं को स्वीकार करते हुए स्थानीय परिषदें स्थापित अथवा पुनः स्थापित की गई, और कुछ गैरसरकारी तथा भारतीय सदस्यों को परामर्श देने के लिए इन परिषदों का सदस्य बनाया गया। 3 दूसरे इस अधिनियम ने केन्द्रीयकरण की ~~नीति~~ को त्याग कर विकेन्द्रीकरण को प्रारम्भ किया। 4

1861 ई० के अधिनियम की आवश्यकता → 1861 ई० के अधिनियम की आवश्यकता का सबसे बड़ा कारण 1857 ई० की क्रान्ति है। क्रान्ति ने अंग्रेजों की आँखे खोल दी। यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि शासक तथा शासित में वास्तविक सम्पर्क का सर्वथा अभाव है, क्योंकि भारतीयों को व्यवस्थापिका में कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। अंग्रेज यह समझ नहीं पा रहे थे कि उनके शासन की भारतीयों पर क्या प्रतिक्रिया पड़ती है। इस तथ्य को सर्वप्रथम सैयद अहमद ने सरकार के सामने पेश किया। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के एक सदस्य सर बार्टल फ्रेरी ने 1861 ई० में लिखा - "परिषद् में भारतीय सदस्य का होना आवश्यक है नहीं तो इसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं। क्योंकि (हम बिना समझे-बुझे ही कि अमुक कानून अनुकूल है या प्रतिकूल) है, करोड़ों भारतीयों के लिए जो कानून बनाते हैं। उनकी इस प्रतिक्रिया को हम केवल विद्रोह के द्वारा ही जान पाते हैं।"

द्वितीय, सभी प्रान्तों के कानून-निर्माण कार्य में सर्वोच्च धारा-परिषद् भी कठिनाई का अनुभव कर रही थी। यह केन्द्रीय निकाय स्थानीय समस्याओं से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। इस दोष को आंशिक रूप से 1853 ई० में दूर किया गया था जब प्रत्येक प्रान्तीय सरकार का एक-2 प्रतिनिधि परिषद् में विधि-निर्माण के लिए आमंत्रित किया गया। किन्तु यह तरीका यथेष्ट नहीं था। अतएव यह आवश्यकता अनुभव की गई कि सर्वोच्च धारा-परिषद् में भारतीयों की इच्छा, उनकी परम्परा एवं रीति-रिवाजों को जानने के लिए उनको अधिक प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।

तृतीय, सर्वोच्च धारा परिषद् अपने कार्यक्षेत्र में एक तरह की छोटी पार्लियामेंट बन गई थी। इसने पार्लियामेंट्री कार्यों एवं विधियों को अपनाना आरम्भ कर दिया था। यह परिवर्तन ब्रिटिश सरकार की इच्छा के विरुद्ध था। ब्रिटिश सरकार तो केवल इतना ही चाहती थी कि विधि-परिषद् विधि निर्माण में अपना सूक्ष्म एवं उचित परामर्श कार्यकारिणी को दिया करे। 1861 ई० के अधिनियम द्वारा विधान-परिषदों के कार्यों को निश्चित किया गया।

कि ~~इस के अधिक~~ जिसके फलस्वरूप 1937 ई० में प्रान्तों को प्रान्तीय स्वराज प्राप्त हो सका। लेकिन 1861 के ऐक्ट द्वारा केन्द्र तथा प्रांतों के कार्यक्षेत्र को अलग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था, जो की संघीय व्यवस्था में होता है। इस अधिनियम द्वारा सपरिषद गवर्नर-जनरल समस्त भारत के लिए और सपरिषद गवर्नर अपने प्रांत के लिए कानून बना सकता था। इसके अतिरिक्त कुछ मामलो ~~व~~ में प्रान्तों को गवर्नर-जनरल की अनुमति कानून बनाने से पूर्व लेनी होती थी। इस अधिनियम का एक तीसरा महत्व यह है कि इससे भारत में उत्तरदायी संस्थाओं का सूत्रपात हुआ।

दोष :- इस अधिनियम के 'अध्यादेश' व 'विभागीय पद्धति' के उपबन्ध आज तक मौजूद हैं. फिर भी यह अधिनियम दोषपूर्ण था और भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं कर सका भारतीय जनता को वास्तविक प्रतिनिधित्व नही प्राप्त हो सका और विधान परिषद के अधिकार अत्यन्त सीमित हो गये। विधान परिषद का कार्य केवल कानून बनाना था इसका प्रशासन अथवा वित्त अथवा प्रश्न इत्यादि पूँछने का कोई अधिकार नहीं था। गवर्नर जनरल को संकटकालीन अवस्था में विधान परिषद की अनुमति के बिना ही अध्यादेश जारी करने की अनुमति थी। यह ~~आ~~ अध्यादेश अधिकतम 6 माह तक लागू रह सकता था। विधान परिषदों में राजा महाराजा या जमींदार की ही नियुक्ति की जाती थी। जोकि सरकार के ही चापलूस होते थे फिर इन परिषदों को कोई वास्तविक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे. प्रो॰ कूपलैण्ड के शब्दों में "ये परिषदें देशी नरेशों के उन परम्परागत दरबारों की तरह होती थी जिनका आयोजन प्रजा के विचारों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया जाता था."

विधायिका परिषदों की शक्तियाँ सीमित थी। उन्हें पार्लियामेंट की तरह काम करने की आज्ञा नहीं दी गई। उन्हें कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों को हटाने का कोई अधिकार नहीं दिया गया। गवर्नर-जनरल को अपनी विधान परिषदों और प्रान्तीय विधान परिषदों के कानूनों पर निषेधाधिकार दिया गया। इससे सारी अन्तिम शक्तियाँ गवर्नर-जनरल के हाथ में आ गई और वह न केवल शासन-सम्बन्धी मामलों में बल्कि कानूनी मामलों में भी अपनी ~~का~~ मनमानी कर सकता था। और अन्त में यह कह सकते है कि इस अधिनियम के द्वारा भारत मे कोई उत्तरदायी सरकार स्थापित नहीं हो सका।

निष्कर्ष

इस अधिनियम में जहाँ अच्छाइयाँ थी, वहीं पर बुराइयों का भी समावेश था, 1861 का भारतीय अधिनियम जहाँ एक ओर उत्तरदायी सरकार स्थापित करने में असमर्थ रहा वहीं दूसरी ओर ब्रिटेन की बर्बर नीतियों से जनता में असंतोष व्याप्त हो गया था। 1861 के अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित विधान परिषदों में सदस्यों में वृद्धि, उनके निर्वाचन की व्यवस्था व शक्तियों में वृद्धि की माँग की, जिसके फलस्वरूप 1892 में नया अधिनियम बना और इसके साथ ही इसने भावी विकास एवं संवैधानिक प्रगति के मार्ग को प्रशस्त किया।

1861 की समीक्षा → 1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम भारत के वैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास में 1861 ई० का भारतीय परिषद् अधिनियम एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इस अधिनियम के द्वारा प्रथम बार भारतीय सदस्य को कार्यकारिणी परिषद् में मनोनीत किया गया। इसे संघ की नीति भी कहते हैं क्योंकि प्रशासन में भारतीयों को सम्मिलित किया गया। इसे विनम्र निरंकुशता की नीति भी कहते हैं। निरंकुश इसलिए कि सरकार पहले की तरह ही अनुत्तरदायी रही एवं 'विनम्र' इसलिए कि अपने देश के प्रशासन में प्रथम बार भारतीय सम्मिलित किये गये।